प्रेम वाहिनी

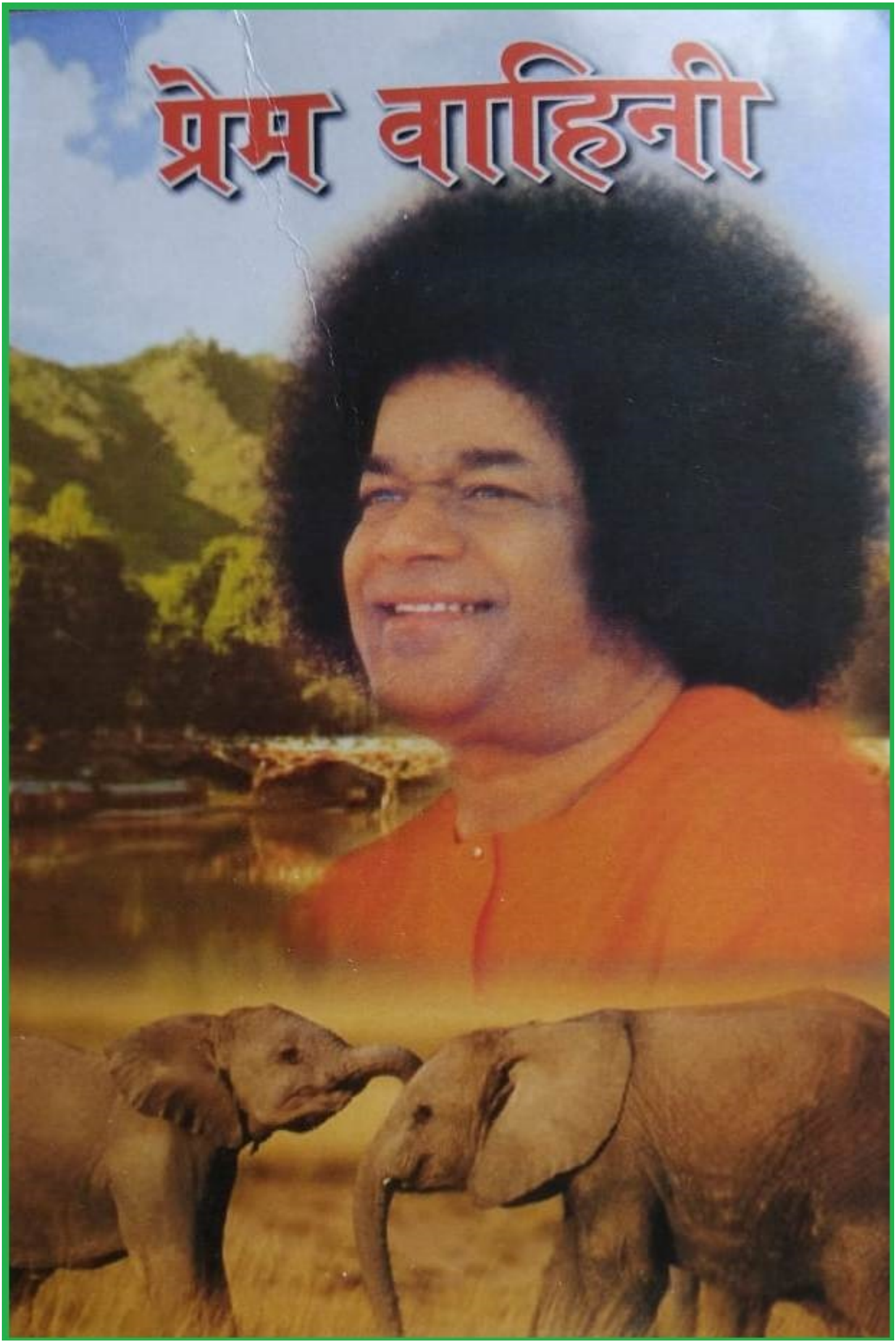

२

पुस्तकाध्ययन और एकाग्रता

पुस्तकें तो अनेक संख्या में और सस्ते मूल्य पर भी उपलब्ध हैं। वेद शास्त्र और पुराणों को कोई भी क्रय करके पढ़ सकता है। गुरुओं की भी कोई कमी नहीं है, ऐसे विद्यापीठों की बहुलता है जो प्रदर्शनात्मक ढंग से ज्ञान का वरदान वितरित करते हैं। मन को प्रशिक्षित करने की सुविधाएँ भी बहुत हैं और पहुँच के अन्दर ही हो सकती हैं। परन्तु फिर भी कहीं से भी ज्ञान के अमृत को चख कर संतोष प्राप्त करने का स्वर सुनाई नहीं पड़ रहा।

जब मैं चारों ओर इन पुस्तकों के ढेरों पर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि इन ग्रन्थों में सन्निहित ज्ञान बंधनों का भेदन कर प्रकाश में आ पाने में असमर्थ है। काम, क्रोध, ईर्ष्या और स्वार्थ के पहाड़ों में कहीं पर भगवान अदृश्य हो गया है। इसी प्रकार ज्ञान का सूर्य भी इन पुस्तकों के विशाल ढेर के पीछे छिपा हुआ है। यद्यपि यह ग्रन्थ इस पृथ्वी पर आने वाले सभी आगन्तुकों के लिए विस्तृत हैं फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इनसे संस्कृति अथवा ज्ञान किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ाया जा सका है; अब भी मानव वनमानुष की स्थिति से ऊपर नहीं उठ सका है। आर्कषक जिल्द और शीर्षक एक सुन्दर चित्र; यही तो पाठक खोजता है अर्थात् क्षणिक आनन्द और सन्तोष के लिए अध्ययन किया जाता है। केवल वे लोग जो विवेक के द्वारा पुस्तकों का चयन करते हैं और उन्हें पढ़ते हैं तथा पढ़े हुए ज्ञान को अपने व्यवहार में उतारते हैं वे ही सत्य का साक्षात्कार करने और स्थायी आनन्द लाभ करने में समर्थ होते हैं। इन्ही का जीवन सार्थक और सफल होता है। इसलिए जो आत्मोन्नति के अन्वेषक हैं और भगवच्चिन्तन् के विचारों में मग्न रहने में ही आनन्द का अनुभव करते है उन्हें ऋषियों और सन्तों के जीवन चरित्रों और ऐसी पुस्तकों को पढ़ना चाहिए जो भगवच्चिन्तन् में सहायक हों। निरुद्देश्य होकर जो हाथ लगे वही पढ़ने से

तो भ्रम और सन्देहों की वृद्धि होती है। इससे कोई लाभ नहीं होता है और न शान्ति प्राप्त होती है।

सिंह, यद्यपि वनराजा होता है, जब जंगल में से होकर भ्रमण करता है तो वह कुछ कदम जाकर पीछे मुड़कर देखता है क्योंकि उसे भी भय होता है कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है। मस्तिष्क में भय रहने से दृष्टि स्थिर न रहकर लड़खड़ाती रहती है। हृदय में हिंसा भाव से दृश्य विकृत दिखाई देता है और दृष्टि भी भटक जाती है।

मानव में समदृष्टि होनी चाहिए उसकी दृष्टि में समस्त सृष्टि समान रूप से शुभ और मंगलमय प्रतीत होनी चाहिये। जैसा कि उसमें अपने लिए निष्ठा और प्रेम है, उसी प्रकार उतने ही प्रेम से उसे सभी प्राणियों को देखना चाहिए। क्योंकि सृष्टि में कुछ भी हेय नहीं है, न ही उसमें रंचमात्र भी दूषित है। दूषित दृष्टि के कारण ही उसमें दोष दिखता है। जैसे रंग का चश्मा हम पहने होते हैं, हमें उसी रंग से रंगी हुई समस्त सृष्टि दिखाई देती है। निरपेक्ष रूप से स्वयं तो यह शाश्वत शुद्ध और पवित्र है।